एक अन-गिना नाम

रेवा यूनुस

"अम्मा, वो तुम्हारा नाम पूछ रहा है!" अज्जू ज़ोरदार घोषणा करता हुआ घर में घुसा।

मगर माई जब उसके सवाल पर ध्यान दिए बिना ही पड़ी रहीं तो वो और अधीर हो उठा, "अम्मा! अम्मा! बोलो ना जल्दी! वो तुम्हारा नाम पूछ रहा है।"

"कौन पूछ रहा है रे तेरी अम्मा का नाम?" रसोई से ही शारदा की दबी-सी आवाज़ आई।

"माँ, वो कोई आया है! बाबू, बाबू है कोई।"

"वो क्या करेगा माई के नाम का?"

"ओह, मुझे क्या पता। तुम बताओ ना, अम्मा का नाम क्या है? अम्मा तो बोलती ही नहीं कुछ! बोलो ना!"

"उफ! ठहर तो ज़रा, बताती हूँ... माई! माई ही तो कहते हैं सब। नाम? मुझे तो याद नहीं पड़ता रे अज्जू। जा उस बाबू से कह दे - माई ही लिख ले। तेरी अम्मा की तो शायद नींद लग गई, वो ना बताएँगी। जा, जा ना अब। उन्हें मत तंग कर, जा।"

"माई का नाम...", शारदा बड़बड़ाती हुई रसोई की ओर चल दी थी।

बेचारी, कैसे जानेगी वो? उनका नाम उसने सुना ही कब? सारा गाँव ही माई बुलाता है - रज्जो के कारन। रज्जो मतलब राजेन्दर, माई का सबसे बड़ा बेटा। राजेन्दर की बहू है शारदा, सो वो भी जब से जानती है, माई ही बोली है। सरद्धा से भी जो बोले है माई ही बोले है और गाली भी दे तो माई को ही देवे है। और उनके नाम की किसी को ज़रूरत ही क्या है?

माई। पहली बार तो रज्जो ही बोला था ना! रसोई की दीवार से टिकी बैठी माई को याद आया। पड़ोस का कल्ला कहता था माई उसे, छेड़ने को। रज्जो जब हुआ भी नहीं था, वो खुद तो इत्ती-सी थी और वो कल्ला उसे माई कहता था।

"माई, हरा दुपट्टा तुझपे फबे है खूब! गिरधर बाबू लाए हैं मेले से?"

"हूँ।" वो झल्ला जाती; चार-एक बरस ही तो छोटा था उससे। पर कल्ला का बाप ठहरा गिरधर का दोस्त, सो कल्ला की माँ गिरधर की नई बहू को घेरकर बैठी रहती दिन भर। फिर कल्ला उसे 'माई' ना कहता तो क्या कहता? बात ठीक भी थी पर माई को कभी भाई नहीं।

और शादी से पहले? शादी से पहले आधा दर्जन नामों से ढँकी एक लड़की थी वो।

"अज्धू? ऐ अज्जू? क्यों रे, तेरी अम्मा को खाना देना भूल गया? मुई कजरी के पल्लू से ही बँधा रहता है!" शारदा ने अपने लाडले को रसोई से ही फटकार लगाई।

"माँ, कजरी का पल्लू कहाँ है?"

"ओह!" शारदा अपना पल्लू मुँह में ठूँसकर भी अपनी हँसी ना रोक पाई। फिर आँखें तरेरकर बोली, "तो जा अपनी अम्मा को खाना दे आ।"

"माँ, वो कजरी...!"

"बस! चुप कर। मर गई कजरी। जा, ये खाना ले जा!"

बस ये कजरी ही तो मरती नहीं है। मर ही जाती तो... तो क्या होता, सोचते हुए माई की मुट्ठियाँ भिंच गईं। माई तो फिर भी माई ही रहती, लेकिन शायद उसका जी ना कसमसाता इत्ता।

***

तीर-सी भागती हुई आई थी खेत से घर तक वो। बाबू लोग जो आए थे। रत्ना, भगा, सोना - सबने देखा था। उसके भी घर आएँगे, सबके ही घर जाना होता था उन्हें - ड्यूटी जो थी उनकी। उफ, बाबा के खेत कित्ते बड़े हैं, घर पहुँचने तक शाम ही हो जाएगी, साँस फूल जाएगी, सो अलग। कुछ कहते ही न बनेगा बाबुओं से।

"माँ!..." सच में ही बोल ना निकले उसके मुँह से।

"क्या हुआ री? खेत पे कौन है? बाबा बोले थे ना रोटी खाने तक वहीं रुकना? कुछ हुआ तो नहीं खेत पर?"

उस 'कुछ' के सारे मतलब नहीं समझ पाई थी माई तब। ना ही आखिरी बात में माँ के स्वर में उतर आई कठोरता और आँखों के डर को।

"ओह माँ! ठठहरो ना! वो बाबू आए हैं।"

"तुझे कौन रोटी खिलाना है उनको? मुए बाबू आए हैं!"

"वो सबसे पूछने आए हैं ना।"

माँ का सवाल बना चेहरा उसका अज्ञान कहे देता था लेकिन माई ना समझ

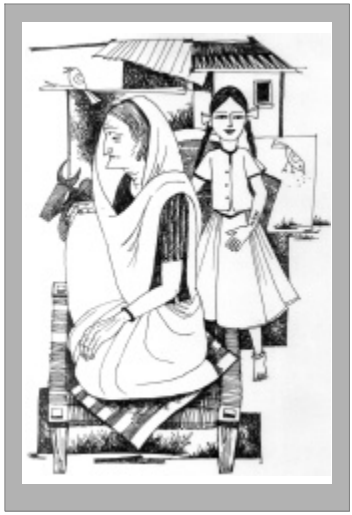

सकी थी कि सब कुछ जानने वाली उसकी माँ को ये कैसे नहीं पता।

"गिनती करेंगे वो लोग।" इठलाती हुई बोली थी माई। फिर घबराकर ज़ुबान ही काट ली थी अपनी। कहाँ से पता चला, क्या कहेगी? उसका तो नाम भी नहीं ले सकती थी। बाबा खाल उधेड़ देंगे - और बिरजू तो मारा ही जाएगा।

"सो? तुझे उससे क्या?" फिर थोड़ा सोचकर बोलीं, "क्या गिनेंगे? अपने यहाँ तो बस गाय हैं।"

"ओह माँ! आदमी गिनेंगे वो तो।" हँसकर दोहरी हो गई थी वो माँ की मूढ़ता पे। गाय क्यों गिनेंगे भला? वो क्या आदमी हैं?

भागकर पीछे के दरवाज़े से कुएँ तक दौड़ गई थी वो; मुँह धोया था फटाफट, और बालों में कंघी फिराकर भगा के घर की ओर हो ली थी। भगा खूब सुन्दर बिन्दी लगाती थी, लाल ही मगर डिझेनदार। बारीक, सुन्दर, एकदम सहर जैसी! बाबू लोग कौन रोज़ आते हैं? फिर भगा को मालूम भी होगा कि कित्ती देर लगेगी माई के घर की बारी आने में।

"ऐ भूरी!"

अपने रंग का एहसास कराने वाला ये नाम सबसे ज़्यादा चुभता था माई को।

"ऐ भूरी! काजल लगाएगी? भाभी का है, चुप रहेगी तो लगाए देती हूँ। खूब फबेगी... बोल, कहेगी तो नहीं?"

"ओ भगा! माँ एक-एक लट्ठ दोनों के धर देगी। किसी ने कह दिया तो? मुआ, धोने से फैल ही जाता है!"

"बारीक लगाएँगे ना। फिर तू खेत से देरी से आना, सूरज जाए। किसी को पता ही नहीं पड़ेगा। कल तड़के धो लेना, मगर याद से, सबसे पहले उठना।"

"वो तो ठीक है, पर अभी?"

"कजरी के पास बैठी रहना। माँ तो खाना खिलाती होगी तेरे बाबा को।"

"फिर ठीक है। लगा, जल्दी कर।"

सोना के घर पर छुपकर देखी थी उसने बाबू की लिखाई। बड़ा साफ लिखा था। भगा के घर से पहले सोना के घर की बारी थी, सो वो बाबुओं को ठीक से देखने वहीं पहुँची थी। कितने सुन्दर, मोती से अक्षर थे बाबू के। कितना अच्छा लगेगा उसका नाम। हँस दी थी भूरी। उसे क्या पता चलता? उसे तो अक्षर पता ही नहीं थे। पढ़ना-लिखना, कुछ भी तो नहीं आता था, क्या देखती अपना नाम?

सोना ही उसके हाथ की ओर इशारा करके खिलखिलाकर बोली थी, "ये जो हाथ में गुदा रखा है, जेई से मिला लेना।"

गुदवाया भी चोरी से ही था, मगर खुशी से उड़ने ही लगी थी भूरी। लाडो, बिट्टो, मीनू - ये सब नाम भाए ही नहीं कभी उसे। बिंदिया - बस यही नाम जँचता था उसे। मगर बस दद्दी ही बुलाया करतीं थीं इस नाम से; और बुलाया भी कुल कोई दो-चार बार होगा। फिर ना दद्दी रहीं, ना माई का ये नाम ही किसी को याद रहा। पाँच भाई, चार भावजें, बाबा, माँ, ताऊ, ताई, बीसियों लोग थे उसके हवेली जितने मकान में; और अलग-अलग आधा दर्जन नाम थे दसरथ प्रसाद सिंग की सबसे छोटी बिटिया के।

जी तो करता था कि किसी और नाम की गुहार हो तो जवाब ही ना दे। फिर माँ की धौल और ताऊ की लट्ठ याद करके खुद को धकियाती-सी उठ ही जाती थी वो। सुबह कुएँ पे जाने को माँ 'लाडो' को याद करतीं, तो आटा मसलने को बड़ी भाभी अपनी 'मीनू' को बुलातीं, चाची और ताई दुलारता हुआ 'बिट्टो' मुँह पे लातीं, मतलब, सुबह के बर्तन मांजने की बारी उसकी। 'भूरी' - इससे तो उसका जी छिल जाता। भूरी ही तो थी वो, छिलता नहीं? भूरी - जो दोपहर भर बाबा के एवज में खेत पर चौकीदारी करती, सबसे छोटे लक्खन भैया के साथ।

पर रजिस्टर वाले बाबू को तो बिंदिया ही बताएगी वो। बाबू का नाम भी तो अच्छा-सा होगा। और जो बड़े दफ्तर में सहर के लोग उस रजिस्टर में नाम पढ़ेंगे तो 'भूरी' सजेगा क्या? बिंदिया ही ठीक है, दद्दी भी खुश हो जाएँगी। सोना के घर से अपने आँगन तक अपना गोदना ही निहारती आई थी भूरी।

मतलब 'बिंदिया'।

घर पहुँचकर साँस धर के कजरी से सटी बैठी रही थी। वो आधा घण्टा भी उसे गर्मी के सूखे आठ महीनों जैसा लगा था। फिर आखिरकार बाबू लोग आ ही गए; ढेर सारे थे। पर जिसे नाम लिखना था वो अलग से चल रहा था, कलम और रजिस्टर लिए। बाबू लोग सुन्दर भी होते हैं कहीं? पर ये बाबू तो बड़ा गोरा-चिट्टा, लम्बा-सा था। भगा तो मर ही गई होगी, सोचते हुए कजरी के खूँटे पर भूरी की पकड़ कस गई।

"नाम?"

"दसरथ प्रसाद सिंग।" बाबा की लोह-सी आवाज़ गूँजी तो भूरी का हाथ बरबस ही उसका दुपट्टा जाँच आया था।

"कितने बच्चे हैं?"

"पाँच।"

भूरी पसीने से तरबतर हुई मन ही मन बाबा की आवाज़ को तक रही थी। राजेश, बिंदा, गोकुल, परसा, लक्खन। एक, दो, तीन, चार, पाँच। ओह, उसने फिर गिना, पाँच तो हो गए। दस तक ही तो गिनना आता था उसे, कोई गड़बड़ तो नहीं की? घबराहट में पसीने से भीगी उंगलियाँ फिर भी तो नहीं रही थीं ठीक से।

एक, दो, तीन, चार, पाँच। बाबा ने गलत गिन लिया क्या? पर बाबा को तो हज़ार तक आती है गिनती। इतने ही रुपए लाए थे बाबा, गए हफ्ते दूध बेचकर। गिनके। तो फिर?

"पाँच। पाँच हैं बच्चे मेरे। लड़के।"

"हाँ... और?"

"भाई है मेरा - राम परसाद सिंग।"

पाँच बच्चे? दस हैं बच्चे तो। पर जिज्जी लोगों का तो ब्याह हो गया, चारों का। तो? छह बच्चे। पर बाबा ने पाँच क्यों कहा? भूल गए? हुँह, घर के अन्दर

आते तो याद रखते - भूरी की सूरत भी ठीक से देखे बरस हो गया होगा। तो ताऊ भी तो खड़ा था वहीं। पर उसे तो भूरी फूटी आँख ना सुहावे। नाम भी ये भद्दा-सा उसीने रखा था। तो बाबू लोग तो पूछते। पाँच लड़के हैं, सुन के बस, चुप! लड़की का भी तो पूछते - बाबा को याद आ जाता फिर, बता देते। धत्! बस दिखते हैं भले! लम्बे, ऊँचे ताड़ के। अक्ल नहीं आई लड़की का पूछने की!

"ये है कजरी। इसे मिला के पाँच हुईं गाय। बस साढ़े तीन बरस की है...।" बाबा बड़े हरस से बता रहे थे बाबू को। ये दूसरा था बाबू, पीछे खड़ा था। तो गाय गिनने भी आते हैं बाबू लोग?

"बड़ी ऊँची नसल की है। भगवान की दया से ढेरों दूध देती है! ऐसी प्यारी है... बड़े काम की है। ऊँचे दाम देते हैं बदनापुर वाले, पर हम काहे बेचें? कजरी को तो हम ना बेचेंगे, यहीं रखेंगे!"

भूरी का हाथ खूँटे से फिसला और पैर सीधा जाके टकराया नाँद से। बाबा ऐसे गरजे थे उस दिन कि बिदाई वाले दिन तक भी भूरी उन्हें देखने का दम न कर पाई थी।

"भूरी!"

डिज़ाइन वाली बिन्दी, काजल लगी आँखें, लम्बी चोटी में गुँथे घने बाल, माथे पे छलछलाती पसीने की बूँदें - सहमी-सी भूरी। उसके बाबा की तो जान ही निकल गई। भाई बगल में ही खड़ा था, भूरी का ताऊ, 'उफ ये लड़की!' औरत जात के लिए एक कसी हुई गाली निकली थी भूरी के बाबा के मुँह से।

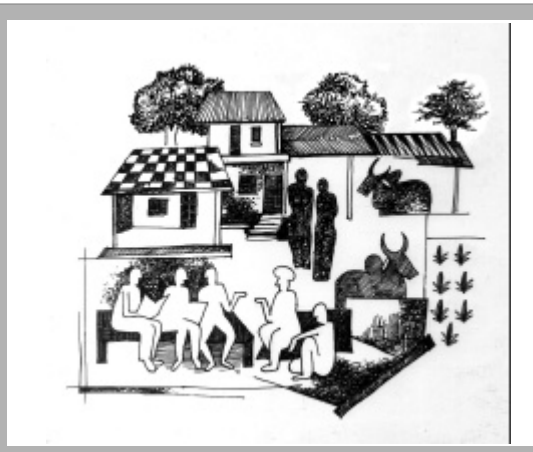

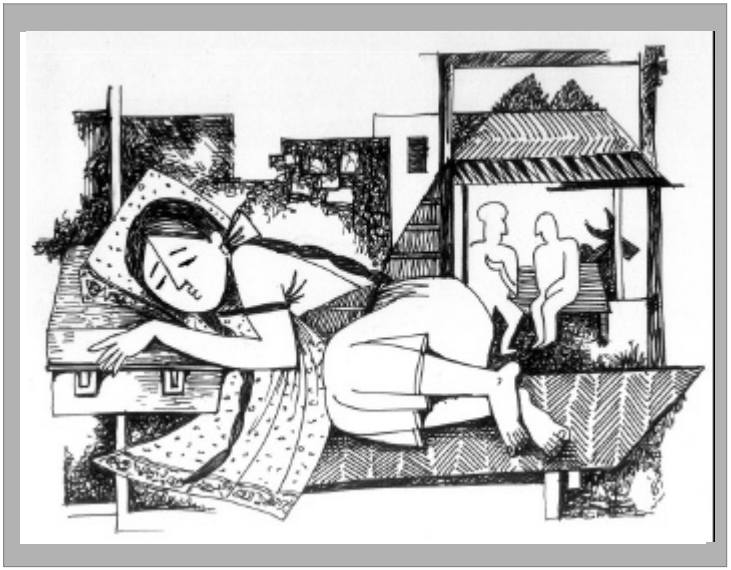

भगवान का दिया सब लेके मुँह उघाड़े आँगन ही में मरने को खड़ी थी! आग लग गई थी उनके तन में। और अपने भाई की ओर तो नज़र ही ना कर पाए थे वो। खुले हाथ से एक धौल पड़ा था भूरी की पीठ पर।

"चल अन्दर।"

भगोना भर पानी उसके मुँह पे दे मारा था माँ ने।

"क्या करने गई थी वहाँ? बड़े बाबू आए हैं! कौन तेरी बारात में आए थे जो तू देखे बिना नहीं मर सकती थी। और ये लाल-पीली कहाँ से होके आई है?"

ताऊ भी सिर्फ घूरता नहीं रहा था, झपट पड़ा था उसके गोदने वाले हाथ पे, "नया नाम भी लिखाई लाईं हैं बिट्टो रानी। कब लिखाया री? अपने जी का करेगी तू अब?"

माँ ने चूल्हे की लकड़ी धर दी थी हाथ के गुदने पे। चुप रही भूरी। भूरी की तो ज़बान ही नहीं थी। ज़बान तो बिंदिया के थी... ज़बान भी उसी के थी, और मरी ललक भी उसी के उठती थी।

भगोना भी फेंक के मारा था माँ ने, "जा, मर जा के पीछे वाले कमरे में!

खिड़की को हाथ भी लगाया तो हाथ तोड़के धर दूँगी लाडो रानी!"

चेहरे पे लाल-काले धब्बे लिए, सिर से पैर तक भीगी, ठिठुरती हुई भूरी थके, पथराए पैरों से दद्दी के कमरे को चल दी थी।

"दद्दी...!"

दीवार से टिकी थाली थी दद्दी की या पेटी पर पड़ी उनकी शॉल, देख के बस उसके मन की सारी तड़प फूट पड़ी। दर्द के मारे और बोल ही ना निकले दद्दी की बिंदिया के मुँह से; रात भर पेटी से लिपटी रोती रही - रात भर दर्द चुप, और चुप होता चला गया।

गिरधर पति था उसका। बस बाबू लोग गए, उसके एक महीने के भीतर ही भूरी का ब्याह तय कर दिया था ताऊ ने। एक महीना - भूरी सच में भूरी, लाडो, बिट्टो, मीनू से छूटकर माई तक पहुँच गई थी उस एक महीने में। बड़ी-सी गोल, लाल बिन्दी और वही लम्बी चोटी।

"भाभी, काजल से आँखें जलतीं हैं मेरी, बहुत।"

सो भगा की भाभी की उँगलियाँ भूरी की पलकों की नोक से छुलकर ही वापस लौट गईं थीं।

जाने गिरधर को क्या नाम बताया था ताऊ ने उसका, और उस आदमी को न जाने कैसी चिढ़ थी उस नाम से। जब तक जिया, माई ने बस हर बार एक हुँकारती हुई 'ऐ!' ही सुनी उसके मुँह से। पर ये बात जैसे माई को छुए बिना ही गुज़र गई। जिसने टीसा वो थी 'कजरी'। गिरधर के बाप की ये माँग बाबा ठुकराते भी कैसे? दिल पे पत्थर रख के सौंप दी थी उसकी रस्सी गिरधर के बड़े भाई के हाथ में।

दिन-रात उसके मर जाने की दुआ माँगती माई बस चीख के रो ही पड़ी थी जब गिरधर ने उस कजरी के जाते ही एक नई नवेली 'कजरी' ला के आँगन में खूँटे से बाँध दी थी। वो खूँटा मानो माई के पत्थर पड़े दिल में हज़ारों दरारें बनाता कहीं गहरे जा गड़ा था।

"इस नाम की ही सब बात है रे रज्जो! एक 'कजरी' ना होवे तो दूध ही ना बिके बाज़ार में। देखना कैसे मनों दूध बिकेगा अब!" स्वामित्व के गर्व और समृद्ध भविष्य की कल्पना ने गिरधर के भारी स्वर में जो लड़कपन की-सी ललक भर दी

थी, उसने जैसे मर चुकी बिंदिया को थोड़े और गहरे ठेल दिया।

फिर वो सिलसिला ऐसा चला कि राजेन्दर के पोते हो गए पर 'कजरी' ना मरी। मगर इतने बरसों बाद भी कोई 'कजरी!' गुहार भरता, तो माई का सारा दम चीख रोकने में ही निकल जाता। थोड़ा और बुढ़ा जाती माई।

आदमी गिनने बाबू लोग आते रहे, गाय गिनने भी आते रहे। पिछले कुछ बरसों में दो-एक बार *भूरी* भी गिन गए, नहीं गिन पाए, तो *बिंदिया।*

***

"अम्मा! माँ!" अज्जू हाँफता हुआ, धूल से सना, आ के टकराया रसोई के दरवाज़े से। चेहरे की धूल पे आँसुओं ने गाँव भर की पगडण्डियाँ उकेर दी थीं।

"माँ, वो बाबू को लौटा लाया हूँ।"

"कौन रे? और लौटा लाया, मतलब?"

"वो...।"

जाने क्यों बरसों बाद माई के पैरों ने 'बाबू' सुनते ही जैसे इठला के साँस ली। देखूँ तो, बाबू...ओह...।

"कितनी प्यारी बच्ची है।" बाबू के स्वर का दुलार आँगन की धूप के बीच जगह बना, जमके बैठ गया। शारदा की सबसे छोटी लड़की थी - तीन लड़कों के बाद हुई - दर्शना। नाम जाने कहाँ से खोद के लाया था छोरी का बाप। दर्शना, छह महीने की, गोल-गोल, बड़ी-बड़ी आँखों वाली, भूरी-सी दर्शना।

"इससे मिलने तो वापस आना ही था।"

इसीलिए तो अज्जू ने कुएँ भर आँसू आँगन में उँडेल दिए थे। बाप ने फटकार जो लगाई थी; बेचारे अज्जू ने जो जोड़ लगाया तो रसोई में माँ की बगल में औंधी पड़ी दर्शना को भूल ही गया। ना आवाज़ करे, ना चले, ना खाए कुछ! अज्जू की अकल ही ना चली कि इस काठ-सी छोकरी को गिनके बाबू लोग आखिर करेंगे क्या। सो ना गिना माई की भूरी-सी, गुड़िया-सी पड़ी रहने वाली दर्शना को।

"माँ बोली कि वो लड़की है।", अज्जू ने अपनी सफाई देनी चाही तो उसके पिता के साथ खड़ा कल्ला का पोता गरजा, "तो? कितने आदमी हैं पूछे थे ना साहब लोग? साँस लेती है कि नहीं? तो गिनेगा नहीं? गधा कहीं का! जा दौड़ जा, कुएँ तक ही पहुँचे होंगे। बता आ, दर्शना भी है।"

अज्जू के बाबा हेडमास्टर थे, सो कोई ज़रूरी बात होगी सोचकर बाबू उलटे पाँव लौट ही आए।

"हाँ जी मास्टर साहब, कहिए।"

"ओह, ये एक गलती हो गई लड़के से, वो उसकी बहन बहुत छोटी है ना अभी, तो...।"

"हाँ, वो बच्चे ने बताया कुछ... तो चार बच्चे हैं आपके। कोई बात नहीं, अभी सही हो जाता है। क्या नाम है इसका?" बाबू रजिस्टर खोलकर *एंट्री* सही करने लगे।

माई की साँसें तेज़ हो गईं - नाम? लिखेंगे? इस बित्ते भर की लड़की का? माई की पड़पोती है वो!

"दर्शना।" लड़की के पिता ने जवाब दिया।

बाबू ने बड़े मीठे स्वर में दोहराया "दर्शना। सच ही है, बिलकुल ठीक नाम है बच्ची के लिए। हाँ, तो एक लड़की भी जोड़ लूँ आपके घर में, चलिए...।"

"अज्जू, इन्हीं बाबू ने पूछा था नाम?" माई चाहकर भी अपनी धीमी आवाज़ में लहर भरती उमंग को पूरा दबा नहीं पाई। अज्जू अभी भी हाँफ रहा था, पर उसके आँसू रुक गए थे। 'हाँ' में सिर हिला दिया उसने। माई ने अपना पूरा दम लगाकर पैर घसीटे और आँगन में जा पहुँची।

"ये?" बाबू ने माई की ओर इशारा किया।

मगर बाबू को देखकर भी न देखा माई ने; लम्बा, गोरा-चिट्टा एक बाबू फिर गया उसकी नज़रों में। लाल डिज़ाइन वाली सुन्दर बिन्दी लगा, पसीने से भीगा भूरा माथा, काजल की बारीक लकीरों के पहरे में दो अकुलाती आँखें, अपने ही भार और लचक से झुँझलाती, इठलाती, कमर के नीचे तक झूलती एक लम्बी, मोटी-सी चोटी - कुछ भी न था अब। पर जो उस दिन था, वो था आज। *बिंदिया* थी आज।

इस नाम का मोह क्यों पगली से छूटा नहीं था कभी?

भूरी, माई, बिट्टो या गिरधर की 'ऐ!' - अब तो कोई भी नाम चल जाता। पूरी ज़िन्दगी निकाल दी थी माई ने इस नाम के बिना। फिर?

फिर? ज़िन्दगी निकलती भी नहीं इस नाम के बिना माई की। मर के भी माई को जिलाती रही - बिंदिया। भूरी, बिट्टो, लाडो, मीनू को हर धौल पे, हर लट्ठ पे, बिखरने से बचाती रही - बिंदिया। भूरी का तो दिल ही न होता खेत पे जाने का, ना मीनू का जी करता रसोई में सूरज से भी पहले उगने का। बिट्टो बर्तनों की ओर मुँह ना करती; और 'ऐ!' सुन के गिरधर की नवेली ब्याहता तो ईंट ही दे मारती! पर मरी बिंदिया ने कभी 'ना' भी तो नहीं कहने दिया। 'ना' कहती तो जीती कैसे?

गिरधर की हुंकार पे हर बार हाजिरी भी लगाती रही, रज्जो समेत आठ झिलमिल-झिलमिल दीए अपनी उठती, गिरती साँसों की ओट में बालती भी रही, उन्हीं साँसों की आँच में 'कजरी' सुन-सुनकर हर बार झुलसती भी रही। भूरी के एक-एक आँसू पे माई जो हर बार कसमसाती तो बिंदिया के हाथ जैसे एक मोटे से रजिस्टर के अदेखे पन्नों से निकल उसे कस के थाम लेते। माई के बाँझ मन और बाबू के रजिस्टर के अलावा और कौन ठौर था बिंदिया का? एक से निकलकर दूसरे तक जाने की राह ही माई का जीवन हो गया था जैसे।

"ये?" बाबू की जिज्ञासा सहज ही थी। इतनी झुर्रियों में से झाँकती किसी एक जोड़ी आँखों में कभी बाबू ने इतनी चमक न देखी होगी!

अज्जू के बाबा ने ही जवाब दिया, "दद्दी हैं मेरी - माई।"

एकदम सधे स्वर में माई की आवाज़ आई, "ना।... बिंदिया।"

बरसों लम्बे, मगर फिर भी लगभग अनजान से इन्तज़ार के बाद माई के होठों पर ये नाम आया तो, मगर अपनी आवाज़ ही

जैसे वो सुन न सकी।

"बिंदिया...", बाबू ने दोहराया भी, मगर माई को बस हिलते होंठ दिखे। कानों ने तो जैसे इस नाम को ना सुनने की कसम खा ली थी। मर ही जाती माई जो सुन लेती; दद्दी के जाने के बाद, आज...। दीवार के सहारे खड़ी माई, धीरे-से उसीसे सट के बैठ गई। पैर जैसे और सम्भाल न सकते हों। अब जाना भी कहाँ था माई को?

रेवा यूनुसः भौतिक शास्त्र से स्नातकोत्तर। वर्तमान में टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसिज़, मुम्बई से एलीमैंट्री एजूकेशन में एम.ए. कर रही हैं। एकलव्य, इन्दौर में विज्ञान समूह में कार्यरत हैं।

सभी चित्रः शालिनी सोनीः जोधपुर स्कूल से पारम्परिक लघु चित्रशैली में प्रशिक्षित। पिछले एक दशक से कला के क्षेत्र में सक्रिय। राज्य और राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित। जोधपुर में निवास।

डिज़ायनिंगः शिव कुमार गाँधीः मूलतः चित्रकार हैं। देश-विदेश में प्रदर्शनी आयोजित हो चुकी हैं। शौकिया डिज़ायनिंग भी करते हैं। जयपुर में निवास।